



प्राचीन भारत में शिक्षा व्यवस्था का विकास

डॉ. वन्दना शर्मा

असिस्टेंट प्रोफेसर - इतिहास

राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, फतेहाबाद, आगरा (उ. प्र.)

सारांश

प्राचीन भारत में शिक्षा का इतिहास किसी एक अपरिवर्तित गुरुकुल पद्धति का इतिहास नहीं है। वैदिक परिवारों और आचार्यकुलों से आरंभ हुई अनेक शिक्षण परंपराएँ समय के साथ नगरों, शिल्प समुदायों, बौद्ध और जैन संघों तथा बड़े महाविहारों तक पहुँचीं। इस शोधपत्र का उद्देश्य शिक्षा के उद्देश्यों, पाठ्यविषयों, शिक्षण विधियों, संरक्षण और सामाजिक पहुँच में हुए परिवर्तनों की विवेचना करना है। अध्ययन ऐतिहासिक साहित्य और नालंदा के पुरातात्विक विवरण पर आधारित है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि मौखिक स्मरण, संवाद और व्यक्तिगत शिक्षण के साथ संस्थागत आवासीय अध्ययन और बहुविषयी विमर्श विकसित हुआ। किंतु उपलब्ध साक्ष्य उच्च शिक्षा केंद्रों पर अधिक केंद्रित हैं; इसलिए पूरे समाज की साक्षरता या सभी समूहों की समान भागीदारी के बारे में व्यापक दावा उचित नहीं है। नालंदा के सुरक्षित अवशेषों से संबंधित संख्याएँ प्रस्तुत तालिका और ग्राफ में दी गई हैं; वे प्राचीन भारत की शिक्षित आबादी के आँकड़े नहीं हैं।

मुख्य शब्द

वैदिक शिक्षा, गुरुकुल, बौद्ध विहार, तक्षशिला, नालंदा, शिक्षा का इतिहास

प्रस्तावना

शिक्षा की संस्थाएँ किसी समाज की ज्ञान संबंधी आवश्यकताओं और उसके सामाजिक ढाँचे से जुड़ी होती हैं। प्राचीन भारतीय उपमहाद्वीप में भी शिक्षा का स्वरूप राजनीतिक सत्ता, धार्मिक समुदायों, अर्थव्यवस्था, भाषा और नगरों के विकास के साथ बदला। किसी युग में वेदों की शुद्ध मौखिक परंपरा प्रमुख रही, तो कहीं व्याकरण, चिकित्सा, दर्शन, तर्क और व्यवहारिक कौशलों को प्रतिष्ठा मिली। इसलिए प्राचीन शिक्षा को केवल धार्मिक अनुष्ठान तक सीमित समझना और आधुनिक विद्यालय का सीधा पूर्वरूप मान लेना, दोनों ही सरलीकरण हैं।

इस विषय का अध्ययन आज इसलिए उपयोगी है कि यह स्पष्ट करता है कि ज्ञान कैसे संरक्षित और प्रसारित किया गया तथा किन लोगों को किस प्रकार के अवसर मिले। शिक्षक और विद्यार्थी का निकट संबंध, स्मरण और वाद-विवाद जैसे साधन उल्लेखनीय हैं। साथ ही स्त्री, जाति, आर्थिक स्थिति तथा क्षेत्र से जुड़ी असमानताओं को अनदेखा नहीं किया जा सकता। इस

पत्र में लगभग वैदिक काल से आरंभिक मध्यकाल तक की परंपराओं का ऐतिहासिक क्रम में विवेचन किया गया है। 'प्राचीन भारत' के अंतर्गत अनेक क्षेत्र और समुदाय आते हैं; अतः किसी एक मॉडल को पूरे उपमहाद्वीप का प्रतिनिधि नहीं माना गया है।

अध्ययन के उद्देश्य और पद्धति

अध्ययन का पहला उद्देश्य शिक्षण संस्थाओं के क्रमिक विकास का वर्णन करना है। दूसरा उद्देश्य शिक्षा के पाठ्यक्रम और शिक्षण विधियों में निरंतरता तथा परिवर्तन को समझना है। तीसरा उद्देश्य उपलब्ध स्रोतों की सहायता से संस्थागत उपलब्धियों और सामाजिक सीमाओं का संतुलित मूल्यांकन करना है। (सालोमन, 1998)

यह एक वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक साहित्य अध्ययन है। इसमें वैदिक तथा उत्तरवैदिक परंपराओं की सामान्य ऐतिहासिक व्याख्या, बौद्ध मठिय शिक्षण का इतिहास और यूनेस्को द्वारा प्रकाशित नालंदा महाविहार के पुरातात्विक विवरण का उपयोग हुआ है। तालिका में दिया गया संख्यात्मक विवरण यूनेस्को द्वारा वर्णित सुरक्षित स्थल से लिया गया है। उपलब्ध ऐतिहासिक विवरण विभिन्न कालों के लिए असमान हैं; उनकी तुलना करते समय काल निर्धारण और संस्थाओं के नामों को सावधानी से पढ़ना आवश्यक है। यह पत्र कोई नया सर्वेक्षण, उत्खनन या जनसंख्या संबंधी सांख्यिकीय अनुमान प्रस्तुत नहीं करता।

वैदिक काल की मौखिक और आवासीय परंपरा

वैदिक साहित्य का संरक्षण मुख्यतः श्रवण, उच्चारण और स्मरण से हुआ। मंत्रों के शब्द, स्वर तथा क्रम को याद रखना धार्मिक और विद्वत परंपरा दोनों के लिए आवश्यक था। शिक्षक विद्यार्थियों को बार-बार पाठ सुनाते, वे उसका अभ्यास करते और त्रुटि पर सुधार प्राप्त करते। इस प्रणाली में लिखित पुस्तक की तुलना में प्रशिक्षित स्मृति और नियमित अभ्यास की विशेष भूमिका थी। अलग-अलग पाठ विधियाँ पाठ के संरक्षण में सहायक रहीं। परंतु केवल स्मरण ही शिक्षा नहीं थी; अर्थ, अनुष्ठान, आचरण और दैनिक दायित्व भी सीखने का हिस्सा थे। (अल्तेकर, 1944; मुखर्जी, 1951; शार्फ़े, 2002)

गुरु के निकट रहकर सीखना कई परंपराओं का एक रूप था। आचार्यकुल में विद्यार्थी का जीवन अध्ययन के साथ श्रम, आत्मानुशासन और सामुदायिक दिनचर्या से जुड़ा था। शिक्षा के उद्देश्य में ज्ञान के साथ चरित्र तथा सामाजिक उत्तरदायित्व भी सम्मिलित समझे जाते थे। विद्यार्थियों की उम्र, अध्ययन की अवधि और विषय हर स्थान पर समान नहीं रहे होंगे। वैदिक ग्रंथों में वर्णित आदर्श को सभी परिवारों के व्यवहार का शाब्दिक विवरण समझना गलत होगा। घरेलू शिक्षा, पेशागत प्रशिक्षण और स्थानीय ज्ञान भी गुरुकुल से बाहर विद्यमान रहे।

इस चरण की उल्लेखनीय विशेषता शिक्षक का प्रत्यक्ष मार्गदर्शन था। छात्र के उच्चारण और समझ के अनुसार अभ्यास आगे बढ़ सकता था। इसकी सीमा यह थी कि शिक्षा का प्रसार प्रशिक्षित अध्यापक, समय और सामाजिक संरक्षण पर निर्भर करता

था। अनेक कर्मकांडीय परंपराओं में उच्च अध्ययन तक पहुँच सामाजिक पहचान से नियंत्रित थी। इसलिए 'सबके लिए समान गुरुकुल शिक्षा' जैसी धारणा स्रोतों के अनुरूप नहीं है।

उत्तरवैदिक चिंतन और विषयों का विस्तार

उत्तरवैदिक साहित्य तथा उपनिषदों में प्रश्न, संवाद और तर्क को विशेष स्थान मिलता है। ज्ञान का संबंध केवल मंत्रों को सुरक्षित रखने से नहीं, बल्कि आत्मा, जगत, कर्म और सत्य जैसे प्रश्नों से भी जोड़ा गया। शिक्षक और शिष्य के बीच चर्चा का साहित्यिक रूप उस समय के बौद्धिक आदर्श को दिखाता है। विद्वान और आश्रयदाता विभिन्न विचारों को सुनते थे, यद्यपि ग्रंथों में वर्णित वाद-विवाद को प्रत्यक्ष घटनाओं का पूर्ण अभिलेख नहीं मानना चाहिए। (ओलिवेल, 1998; ब्रॉखोस्ट, 2007; पोलॉक, 2006)

समय के साथ वेदांग जैसे सहायक विषयों की आवश्यकता बढ़ी। उच्चारण और छंद के साथ व्याकरण, निरुक्त, कल्प तथा ज्योतिष संबंधी अध्ययन ने व्यवस्थित ज्ञान की अलग शाखाएँ निर्मित कीं। व्याकरण ने भाषा के नियमों पर विचार को विकसित किया, जबकि अनुष्ठान से जुड़ी व्याख्याओं ने विधि और अर्थ के प्रश्न उठाए। राजनीति, गणना, चिकित्सा, धनुर्विद्या और कृषि या शिल्प से जुड़े ज्ञान का अभ्यास भी समाज में चलता रहा। सभी विषय एक ही संस्थान में या एक समान स्तर पर नहीं पढ़ाए जाते थे। यह विविधता शिक्षा के बदलते सामाजिक उपयोग को दर्शाती है।

शिक्षा की इस बहुलता को समझने के लिए ग्रंथाधारित और व्यवहाराधारित प्रशिक्षण को साथ देखना चाहिए। कारीगर परिवारों और पेशागत समुदायों में कौशल का हस्तांतरण अभ्यास, निरीक्षण तथा सहभागिता से होता था। इनके लिखित प्रमाण अपेक्षाकृत कम मिलते हैं, इसलिए इतिहास लेखन में उनका योगदान दब सकता है। प्राचीन ज्ञान की तस्वीर केवल प्रसिद्ध धार्मिक ग्रंथों से पूरी नहीं बनती।

नगरों और तक्षशिला जैसे शिक्षण केंद्रों का उदय

नगरों, व्यापार मार्गों और राजकीय संरचनाओं के विस्तार ने विशेष ज्ञान की माँग बढ़ाई। उत्तर-पश्चिम का तक्षशिला क्षेत्र विभिन्न समुदायों और मार्गों का संगम था तथा प्राचीन साहित्य में विद्या अध्ययन से जुड़ा हुआ मिलता है। इसे आधुनिक अर्थ में एक प्रशासनिक रूप से एकीकृत विश्वविद्यालय मानना सावधानी चाहता है। अनेक अध्यापक और छात्र एक नगर में सक्रिय हों, तो उससे अध्ययन केंद्र बनता है; उसका संगठन आज के विश्वविद्यालय जैसा होना आवश्यक नहीं है। (थापर, 2002; यूनेस्को विश्व धरोहर केंद्र, तिथि उपलब्ध नहीं-ख)

ऐसे केंद्रों में विद्यार्थियों को अपने गृहक्षेत्र से बाहर जाकर अध्यापकों से सीखने का अवसर मिलता था। चिकित्सा, नीति, भाषा या अन्य विशिष्ट विषयों की प्रसिद्धि किसी स्थान को दूर-दूर तक आकर्षक बना सकती थी। इस प्रकार आवागमन और विद्वानों की प्रतिष्ठा शिक्षा के नेटवर्क को विस्तृत करते थे। फिर भी इन केंद्रों में कुल विद्यार्थियों की विश्वसनीय संख्या या व्यापक समाज की शिक्षा दर का अनुमान लगाना संभव नहीं है। उपलब्ध साहित्य अक्सर विशिष्ट विद्वानों पर अधिक प्रकाश डालता है।

राजा, संपन्न दाता और धार्मिक संस्थाएँ विद्वानों को सहायता दे सकती थीं। संरक्षण से अध्ययन का समय, आवास और संसाधन उपलब्ध होते थे, पर ज्ञान की प्राथमिकताओं पर आश्रयदाता का प्रभाव भी संभव था। शिक्षा के विकास को केवल विचारों की प्रगति के रूप में नहीं, बल्कि आर्थिक अधिशेष और संस्थागत समर्थन से भी जोड़कर देखना चाहिए।

बौद्ध और जैन परंपराओं का योगदान

बौद्ध संघों में भिक्षु और भिक्षुणियों का प्रशिक्षण धार्मिक जीवन की आवश्यकता था। नियम, प्रवचन, ध्यान और दर्शन का अध्ययन सामूहिक अनुशासन के साथ विकसित हुआ। विहार निवास स्थल होने के साथ अध्ययन और चर्चा के स्थान भी बने। कुछ केंद्रों में तर्कशास्त्र तथा अन्य ज्ञान परंपराओं का भी अध्ययन हुआ। बौद्ध परंपराओं के भीतर भी विचार और शिक्षण के अनेक भेद थे; किसी एक पाठ्यक्रम को सभी विहारों पर लागू नहीं किया जा सकता। (बाशम, 1954; हार्वी, 2013; शर्मा, 2005)

जैन परंपराओं ने भी अपने आगमों के संरक्षण, व्याख्या, नैतिक शिक्षा और वाद-विवाद की समृद्ध पद्धतियाँ विकसित कीं। संघ और शिक्षक की भूमिका के साथ ज्ञान की मौखिक तथा लिखित परंपराएँ चलती रहीं। विभिन्न संप्रदायों के बीच बहस से भाषा, तर्क तथा दार्शनिक विवेचन को बल मिला। इस संदर्भ में शिक्षा केवल पाठ का संचार नहीं थी, बल्कि विचारों का परीक्षण और समुदाय की पहचान का निर्माण भी थी।

बौद्ध और जैन शिक्षण को वैदिक व्यवस्था से पूर्णतः पृथक विकास रेखा समझना भी उचित नहीं है। अलग परंपराओं के विद्वानों के बीच प्रतिस्पर्धा और संवाद दोनों थे। नए विषयों तथा बहस की शैली ने बौद्धिक संसार को व्यापक बनाया। फिर भी धार्मिक संस्थाओं में प्रवेश और दीर्घ अध्ययन के अवसर जीवन परिस्थिति, संसाधन, समुदाय तथा संस्था के नियमों से प्रभावित होते थे।

नालंदा और संगठित आवासीय उच्च शिक्षा

नालंदा महाविहार शिक्षा संस्थानों के अधिक संगठित रूप का महत्वपूर्ण उदाहरण है। यूनेस्को के विवरण के अनुसार बिहार के नालंदा स्थल के पुरातात्विक अवशेष तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व से तेरहवीं शताब्दी ईस्वी तक की परतों से संबंधित हैं। महाविहार के रूप में उसका प्रमुख शैक्षिक विकास लगभग पाँचवीं से तेरहवीं शताब्दी ईस्वी में हुआ। इस अंतर से स्पष्ट होता है कि स्थल के आरंभिक अवशेष और विकसित संस्था की तिथियाँ एक समान नहीं हैं। नालंदा में आवासीय विहार, पूजा स्थल तथा विद्वत गतिविधियों के लिए संरचित परिसर थे। (भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, 2015; यूनेस्को विश्व धरोहर केंद्र, तिथि उपलब्ध नहीं-क)

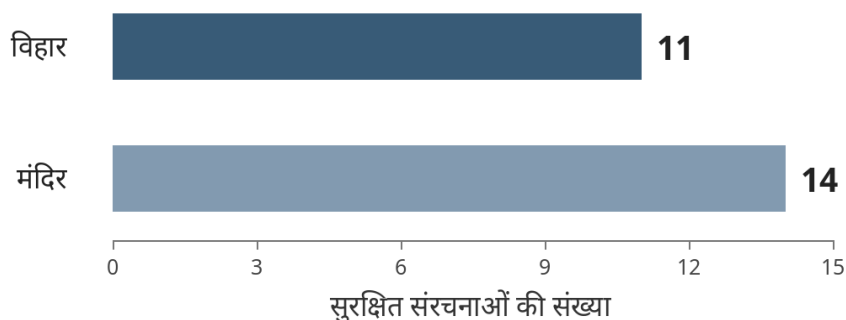
यहाँ अनेक विद्वानों के सहअस्तित्व ने विभिन्न दृष्टिकोणों के अध्ययन को संभव बनाया। भाष्य, विमर्श और शिक्षकों के बीच संवाद उन्नत अध्ययन की पहचान थे। यात्रा और बौद्ध जगत के संबंधों से ऐसे केंद्रों का प्रभाव क्षेत्रीय सीमाओं के बाहर पहुँचा। तथापि प्राचीन यात्रियों के विवरणों में आए विद्यार्थी या अध्यापक संख्याओं को बिना संदर्भ के निश्चित आधुनिक जनगणना के आँकड़ों की तरह नहीं लेना चाहिए। यहाँ प्रस्तुत ग्राफ केवल आज सुरक्षित पुरातात्विक संरचनाओं की संख्या दिखाता है।

तालिका 1 नालंदा स्थल के सुरक्षित अवशेषों का विवरण

यूनेस्को के विश्व धरोहर विवरण में सुरक्षित 23 हेक्टेयर क्षेत्र के भीतर 11 विहार और 14 मंदिर बताए गए हैं। ये वर्तमान में पहचाने गए सुरक्षित अवशेष हैं, संपूर्ण ऐतिहासिक परिसर या विद्यार्थियों की संख्या नहीं।

संरचना	सुरक्षित संख्या	संदर्भ
विहार	11	आवासीय तथा शैक्षिक भवन
मंदिर	14	धार्मिक परिसर की संरचनाएँ

स्रोत: यूनेस्को विश्व धरोहर केंद्र, नालंदा महाविहार स्थल विवरण।

नालंदा के सुरक्षित अवशेष

चित्र 1 नालंदा के सुरक्षित विहार और मंदिरों की संख्या। स्रोत: यूनेस्को। यह चित्र ऐतिहासिक छात्र संख्या नहीं दर्शाता।

शिक्षण विधियाँ और मूल्यांकन

प्राचीन काल की अनेक शिक्षण विधियों में मौखिक पाठ, पुनरावृत्ति, प्रश्नोत्तर, व्याख्या और बहस शामिल थे। पाठ को याद करने की प्रक्रिया से शुद्ध संरक्षण संभव हुआ, जबकि चर्चा से उसके अर्थ और अनुप्रयोग पर विचार विकसित हुआ। शिक्षक का उदाहरण तथा विद्यार्थी की नियमित दिनचर्या भी शिक्षा का अंग मानी जाती थी। किसी कौशल की शिक्षा में अवलोकन और व्यावहारिक अभ्यास अधिक महत्वपूर्ण रहे होंगे। (राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, तिथि उपलब्ध नहीं; शार्फ़े, 2002)

आज की सार्वभौमिक लिखित परीक्षा प्रणाली जैसी कोई एक व्यवस्था प्राचीन भारत में नहीं थी। योग्यता की पहचान विद्वत बहस, गुरु की स्वीकृति, पाठ की दक्षता या पेशागत काम करने की क्षमता के माध्यम से हो सकती थी। अलग विषयों के मानदंड अलग रहे होंगे। शिक्षण के इन रूपों को आधुनिक परीक्षा की अनुपस्थिति के कारण अव्यवस्थित कहना उचित नहीं है, लेकिन उनमें पारदर्शी और सभी के लिए समान मूल्यांकन की गारंटी भी नहीं थी।

पांडुलिपियों के बढ़ते उपयोग से ज्ञान का संकलन, प्रतिलिपि निर्माण और व्याख्या नए रूपों में संभव हुए। मौखिक परंपरा समाप्त नहीं हुई; कई समुदायों में मौखिक और लिखित माध्यम साथ चलते रहे। लिखित सामग्री की उपलब्धता क्षेत्र, भाषा और संरक्षण के साधनों पर निर्भर थी। इसलिए किसी काल को केवल 'मौखिक' या केवल 'लिखित' घोषित करना शिक्षा की मिश्रित प्रकृति को छिपा देता है।

सामाजिक पहुँच और सीमाएँ

शिक्षा की उपलब्धि का मूल्यांकन उसकी पहुँच के बिना अधूरा रहता है। संस्कृत में उच्च अध्ययन और विशिष्ट कर्मकांडीय प्रशिक्षण के अवसर अनेक परिस्थितियों में जाति तथा लिंग से प्रभावित थे। कुछ ग्रंथों और कथाओं में विदुषियों या सामाजिक सीमाओं को पार करने वाले व्यक्तियों के उदाहरण मिलते हैं, पर अपवादों के आधार पर सार्वभौमिक समानता सिद्ध नहीं होती। दूसरी ओर विभिन्न भाषाओं, समुदायों और पेशों में ज्ञान अर्जन की ऐसी पद्धतियाँ मौजूद थीं जिन्हें औपचारिक ग्रंथ शिक्षा के संकुचित अर्थ में शामिल नहीं किया जाता। (अल्तेकर, 1944; मुखर्जी, 1951)

स्त्रियों के शिक्षण का अनुभव भी एकरूप नहीं था। परिवार की आर्थिक स्थिति, सामाजिक स्थिति, स्थानीय परंपरा और धार्मिक समुदाय अवसरों को बदलते थे। कुछ बौद्ध संस्थाओं में भिक्षुणियों के लिए धार्मिक अध्ययन का स्थान था, जबकि अनेक परिस्थितियों में महिलाओं की स्वतंत्र पहुँच सीमित थी। इस असमान इतिहास को स्वीकार करना प्राचीन शिक्षण की उपलब्धियों को नकारना नहीं, बल्कि उसका अधिक सटीक आकलन करना है।

भौगोलिक दूरी और जीविका भी महत्वपूर्ण बाधाएँ थीं। लंबी अवधि तक आवासीय अध्ययन करने की क्षमता सभी परिवारों में समान नहीं हो सकती थी। राजकीय तथा दानदाता सहायता कुछ संस्थाओं को टिकाऊ बनाती थी, किंतु उसका वितरण क्षेत्र और काल के अनुसार बदलता था। उच्च अध्ययन के प्रसिद्ध केंद्रों की उपस्थिति से सामान्य जन के विद्यालयी नामांकन या साक्षरता का निष्कर्ष निकालना संभव नहीं है।

विश्लेषण और समकालीन प्रासंगिकता

समग्र रूप से प्राचीन शिक्षा व्यवस्था में तीन बड़े परिवर्तन दिखाई देते हैं। पहला, ज्ञान संरक्षण के परिवार और गुरु केंद्रित रूपों के साथ अधिक बड़े तथा स्थायी संस्थान उभरे। दूसरा, पाठ्यविषयों में धार्मिक व दार्शनिक चिंतन के साथ भाषा, तर्क और व्यवहारिक ज्ञान की विभिन्न धाराएँ सक्रिय रहीं। तीसरा, शिक्षा का नेटवर्क यात्राओं, दान, राजकीय संरक्षण और संस्थाओं के बीच संपर्क से विस्तृत हुआ। ये परिवर्तन सभी क्षेत्रों में एक ही गति से नहीं हुए और पुरानी पद्धतियाँ नई संस्थाओं के साथ चलती रहीं।

वर्तमान शिक्षा के लिए शिक्षक और छात्र का संवाद, गहन अध्ययन और बहुविषयी विमर्श प्रेरक सिद्धांत हो सकते हैं। किंतु इतिहास से कोई पद्धति जस की तस उठाकर आज लागू नहीं की जा सकती। आधुनिक सार्वजनिक शिक्षा को समान अवसर,

प्रमाणिक ज्ञान, समावेशन और उत्तरदायित्व के मानकों पर भी खरा उतरना होता है। प्राचीन परंपरा का उपयोग इतिहास को समझने के लिए किया जाए, उसे आदर्शकृत कर असमानताओं को छिपाने के लिए नहीं।

निष्कर्ष

प्राचीन भारत की शिक्षा व्यवस्था का विकास मौखिक वैदिक पाठ, गुरु-शिष्य प्रशिक्षण, दार्शनिक संवाद, पेशागत सीख, धार्मिक संघों और नालंदा जैसे आवासीय महाविहारों के परस्पर जुड़े इतिहास के रूप में समझा जा सकता है। इसकी प्रमुख उपलब्धियों में ज्ञान का दीर्घ संरक्षण, शिक्षकों की परंपराएँ और गंभीर बौद्धिक विमर्श शामिल हैं। साथ ही पहुँच में भेद और साक्ष्यों की असमान उपलब्धता इतिहास लेखन की महत्वपूर्ण सीमाएँ हैं। सुरक्षित नालंदा अवशेष संस्थागत संरचना के प्रत्यक्ष संकेत देते हैं, किंतु पूरे उपमहाद्वीप की शिक्षा स्थिति के सांख्यिकीय प्रतिनिधि नहीं हैं। इस संतुलित समझ से प्राचीन शिक्षा की विविधता और परिवर्तनशीलता दोनों सामने आते हैं।

संदर्भ

1. अल्तेकर, ए. एस. (1944). *प्राचीन भारत में शिक्षा*. नंद किशोर एंड ब्रदर्स।
2. भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण। (2015). *नालंदा महाविहार के उत्खनित अवशेष: विश्व धरोहर नामांकन दस्तावेज़*. यूनेस्को विश्व धरोहर केंद्र। <https://whc.unesco.org/uploads/nominations/1502.pdf>
3. बाशम, ए. एल. (1954). *अद्भुत भारत: मुस्लिम आगमन से पहले भारतीय उपमहाद्वीप की संस्कृति का सर्वेक्षण*. सिड्जविक एंड जैक्सन।
4. ब्रोंखोस्ट, जे. (2007). *वृहत्तर मगध: प्रारंभिक भारत की संस्कृति का अध्ययन*. ब्रिल।
5. हार्वी, पी. (2013). *बौद्ध धर्म का परिचय: शिक्षाएँ, इतिहास और व्यवहार* (द्वितीय संस्करण)। कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
6. मुखर्जी, आर. (1951). *प्राचीन भारतीय शिक्षा: ब्राह्मणीय और बौद्ध परंपराएँ*. मैकमिलन।
7. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद। (तिथि उपलब्ध नहीं)। प्राचीन भारत की शिक्षा व्यवस्था। *इट सो हैपन्ड* (अध्याय 8)। <https://www.ncert.nic.in/textbook/pdf/heih108.pdf>
8. ओलिवेल, पी. (1998). *प्रारंभिक उपनिषद: टिप्पणी सहित पाठ और अनुवाद*. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
9. पोलॉक, एस. (2006). *मनुष्यों की दुनिया में देवताओं की भाषा: पूर्व आधुनिक भारत में संस्कृत, संस्कृति और सत्ता*. यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस।
10. सालोमन, आर. (1998). *भारतीय अभिलेख विद्या: संस्कृत, प्राकृत और अन्य भारतीय आर्य भाषाओं के अभिलेखों के अध्ययन की मार्गदर्शिका*. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

11. शार्फ़े, एच. (2002). *प्राचीन भारत में शिक्षा*. ब्रिल। <https://doi.org/10.1163/9789047401476>
12. शर्मा, आर. एस. (2005). *भारत का प्राचीन अतीत*. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
13. थापर, आर. (2002). *प्रारंभिक भारत: उद्गम से ईस्वी सन् 1300 तक*. पेंगुइन बुक्स।
14. यूनेस्को विश्व धरोहर केंद्र। (तिथि उपलब्ध नहीं-क). *नालंदा, बिहार में नालंदा महाविहार का पुरातात्विक स्थल*. <https://whc.unesco.org/en/list/1502/>
15. यूनेस्को विश्व धरोहर केंद्र। (तिथि उपलब्ध नहीं-ख). *तक्षशिला*. <https://whc.unesco.org/en/list/139/>